समाज मे नैतिक पतन और मीडिया की भूमिका

पूरे विश्व मे भौतिक विकास तो बहुत तेजी से हो रहा हैं, किन्तु उसके साथ साथ नैतिक पतन भी हो रहा हैं। विश्व के अनेक देशो मे यह नैतिक पतन धीरे–धीरे हो रहा हैं। किन्तु दक्षिण एशिया के देशो मे बहुत तीव्र गति से हो रहा है, और वह गति भारत मे और भी तीव्र हैं। पूरे विश्व मे इस नैतिक पतन के कई कारण दिख रहे है जिनमे 6–7 प्रमुख है–1. संचालक और संचालित के बीच बढती दूरी 2. निष्कर्ष निकालने मे विचार मंथन की जगह प्रचार का अधिक प्रभावकारी होना 3. राजनीति और समाज सेवा का व्यवसायीकरण 4. भौतिक पहचान का संकट 5. समाज का टूटकर वर्गो मे बदलना 6. निष्प्रभावी राज्य व्यवस्था 7. मानव स्वभाव ताप वृद्धि 8. मानव स्वभाव स्वार्थ वृद्धि। यद्यपि ये सभी समस्यायें विश्व व्यवस्था पर घातक प्रभाव डाल रही है, किन्तु इसमें भी निष्कर्ष निकालने मे विचार मंथन की जगह विचार प्रचार अधिक घातक सिद्ध हो रहा है।

भारत एक लोकतांत्रिक देश है और यहॉ निष्कर्ष निकालने के लिये दो इकाईयॉ हैं– 1. सामाजिक निष्कर्ष निकालने के लिये कुछ विचारको की भूमिका। 2. राजनैतिक निष्कर्ष निकालने के लिए विधायिका अथवा संसद। सामाजिक निष्कर्ष निकालने के मामलों में विचारको की भूमिका या तो शून्यवत हो गई है अथवा नगण्य। आज तो स्थिति यह हो गई है कि वास्तविक विचारकों के अभाव मे बाबा रामदेव अथवा आशाराम बाबू सरीखे लोग ही विचारक बन बैठे है। संसद या विधायिका में भी विचार मंथन की जगह अपने चुनाव क्षेत्र की लोक प्रियता को ही महत्वपूर्ण माना जा रहा है। यहां तक कि न्यायपालिका मे भी सामाजिक लोक प्रियता प्राप्त करने की होड मची है। इस लोक प्रियता की होड और विचार मंथन का अभाव ही यह परिणाम दे रहा है और अनेक असत्य धारणाये समाज मे सत्य का स्थान ले रही है।

समाज मे असत्य धारणाओ को सत्य के समान स्थापित करने के लिये विचार–प्रचार का सहारा लिया जाता है। वास्तविक विचार तो वह होता है जो विचार मंथन के बाद निकला हुआ निष्कर्ष हो, और उस विचार मंथन मे भावनाओ की जगह तर्क का सहारा लिया जाये। किन्तु सच्चाई यह है, कि चालाक लोग स्वार्थ वश बिना विचार मंथन के ही किसी बात को लेकर उसका सघन प्रचार शुरू कर देते है। इस सघन प्रचार का ही परिणाम होता है कि वह असत्य बात धीरे–धीरे समाज मे स्वीकृत हो जाती है, और समाज उसे सच मान लेता है, जबकि उस बात के पीछे ना कोई विचार मंथन होता है न कोई तर्क। सच्चाई यह है कि समाज तो भावना प्रधान होता है, वह तो अनुकरण जानता है। विचार मंथन नही है और विचारको के अभाव मे समाज इन नकली विचारको या राजनेताओ के निष्कर्षो को ही सच मानकर उसका अनुकरण करने लगता हैं।

इस प्रचार मे अन्य अनेक साधनो का तो प्रयोग किया जाता ही है, किन्तु इलेक्ट्रानिक मीडिया और प्रिन्ट मीडिया इस प्रचार मे बहुत महत्वपूर्ण हो गये है। कुछ वर्ष पहले तक ये दोनो, घटनाओ की या विचारो की सूचना देने तक सीमित होते थे। किन्तु वर्तमान समय मे मीडिया के ये दोनो साधन खुले व्यवसाय का रूप ले चुके है, और अब प्रचार तंत्र के इन दोनो साधनो का सामाजिकता से दूर–दूर तक कोई संबंध नही है। मीडिया के ये दोनो माध्यम लोकतंत्र के चौथे स्तम्भ के रूप मे समाज को धोखा देने के लिये स्वयं को प्रचारित करते रहते हैं। किन्तु वास्तविक लोकतंत्र से इनका दूर–दूर तक कोई संबंध नही है। यह बात अवश्य है कि भारत के लोकतंत्र के तीन स्तंभ–न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका की अपेक्षा इनका कार्य कम बुरा है। क्योंकि लोकतंत्र के तीन स्तंभ न्यायपालिका, कार्यपालिका और विधायिका अपने कार्यो को व्यवसाय के रूप मे बदलकर अमानत मे खयानत जैसा दण्डनीय अपराध करते है। जबकि मीडिया अपने को व्यावसायिक रूप मे बदलकर भले ही गैर कानूनी अथवा असामाजिक कार्य करता हो किन्तु किसी तरह का सामाजिक अपराध नही करता। स्पष्ट है कि हम लोकतंत्र के तीन स्तंभो को अपनी ओर से पावर भी देते है और पैसा भी। जबकि मीडिया को हम किसी तरह का ना पावर देते है न ही पैसा। इसके बाद भी वे मीडिया कर्मी लोकतंत्र के अन्य तीन स्तंभो की अपेक्षा कम बुरे है, तो वे आलोचना के पात्र नही है।

मीडिया के दोनो स्तंभ पूरी तरह व्यावसायिक हो गये है, इसमे अब कोई संदेह की गुंजाइस नही है। अरविन्द केजरीवाल ने जो कुछ कहा है वह पूरी तरह सच है। यह अलग बात है कि यह बात कई वर्षो से स्पष्ट दिख रही है। अरविन्द केजरीवाल ने यही बात हिम्मत के साथ कही है जो दूसरे लोग नही कहते। कौन नही जानता कि इलेक्ट्रानिक मीडिया के ही कुछ लोग एक खबर छिपाने के लिये सौ सौ करोड रूपये लेने का प्रयत्न करते है। कौन नही जानता कि अनेक अखबारो मे सच खबर भी छपवाने के लिये कभी कभी पैसे देने पडते है और पैसे देकर झूठी खबर छपवाना तो बिल्कुल ही आम बात है। मैने स्वयं अनुभव किया कि अनेक दिनो से जी न्यूज का इलेक्टानिक मीडिया बिल्कुल स्पष्ट होकर अरविन्द केजरीवाल के खिलाफ अभियान चला रहा था। मैने स्वयं अनुभव किया कि इंडिया टीवी का नाम, टीम अरविन्द केजरीवाल के एक सदस्य संजय सिंह द्वारा भूल से ले लिये जाने के बाद उसी बात को कई दिनो तक इस तरह रटते रहा कि जैसे कि कोई बहुत बडी भूल हो गई हो। मैने यह भी देखा है कि संम्पूर्ण इलेक्ट्रानिक मीडिया ने संगठित और एक जुट होकर एक ओर तो अरविन्द केजरीवाल के इस आरोप का प्रतिवाद किया दूसरी ओर स्वयं ही बार–बार यह बात भी दुहराते रहे कि मीडिया ने ही अरविन्द केजरीवाल को प्रयत्न पूर्वक इतना उपर उठाया है, और उन्हे इसके लिये आरोप लगाने की जगह धन्यवाद ज्ञापन करना चाहिये। मीडिया के इस कथन का अर्थ यह हुआ कि मीडिया जब चाहे किसी अयोग्य व्यक्ति को आसमान तक उपर उठा सकता है और जब चाहे पाताल तक नीचे गिरा भी सकता है। मै समझता हूॅ कि वर्तमान समय मे मीडिया के पास आंशिक रूप से ऐसी अलोकतांत्रिक शक्ति है भी। मै स्थानीय स्तर पर भी जानता हूॅ कि रामानुजगंज के एक लोकप्रिय समाचार पत्र के संवाद दाता से ही कलेक्टर स्तर तक के शासकीय कर्मचारी इतना डरते है कि वह गलत काम करके भी एक बढा आदमी हो गया है और उसकी गलतियां सही मान ली जाती है।

मीडिया यदि इस कार्य को व्यवसाय के रूप मे करता भी है, तो उसमे गलत क्या है? यदि वह ब्लैकमेल ना करके सीधा–सीधा भी पैसा लेना शुरू कर दे, तो इसमे अपराध क्या है ? आखिर सरकारें मीडिया को जितनी बडी राशि विज्ञापन के रूप मे देती है, वह भी तो एक प्रकार का लालच ही है, तो कोई सच खबर छापने या दबाने के लिये किसी मीडिया वाले ने पैसे ले लिया तो, उसमे गलत क्या है? यदि गलत माना जाय तो सिर्फ इतना ही अनैतिक है कि कोई व्यक्ति मुफ्त भोजनालय का बोर्ड लगाकर पैसे से भोजन देना शुरू कर दे, अर्थात मीडिया के लोग अपने को चरित्रवान, ईमानदार कहते भी रहे और चुपचाप कमाने का व्यवसाय भी करते रहे। इससे अधिक मीडिया का कार्य न कोई अपराध है, न अनैतिक। भ्रष्ट और बेईमान लोग स्वयं को मीडिया से मिलकर असत्य खबरे छपवाते हैं, दूसरी ओर स्वयं को ईमानदार घोषित करने के लिये एक दूसरे पर आरोप भी लगाते रहते है। मेरे विचार से अरविन्द केजरीवाल के आरोपों के अनुसार मीडिया उतना दोषी नही है जितना भारत के

तीनो लोकतांत्रिक संस्थाएं, जो लगातार स्वयं तो अपराध कर रही है तो दूसरी तरफ मीडिया के लिये अनैतिक प्रतिबंध लगा रही है। अंत मे मेरा यही निवेदन है कि मीडिया को एक व्यवसाय मानकर उनकी अलग अलग विश्वसनीयता को परखने का प्रयत्न करना चाहिये न कि आंख मूंदकर उसमें लिखी बातों को सच मानने का।

पत्रोत्तर

1. विचार– एम एस सिंगला अजमेर राजस्थान, ज्ञान तत्व– 50060।

मंहगाई आपके विचार मंथन का प्रमुख विषय रहा है। इसमे आपकी मूल सोच यह रही है कि मंहगाई नही है, मुद्रास्फीति है। यह सोच सही है। यहां इन दोनों स्थितियों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जा रहा है। देखिये आप उनसे कहां तक सहमत हो पाते है। जनता के लिये आम तौर पर मुद्रा स्फीति को समझ पाना मुश्किल होता है।

मंहगाई वस्तु के व्यापार और उत्पाद से संबंधित है। उसकी उपलब्धता को प्रभावित कर दिया तो वह वस्तु उपभोक्ता को न मिल पाने से मंहगी हो जायेगी। यानि जिस वस्तु के लिये 5 रूपये दिये जाते थे, उसके लिये 6–7 रूपये या अधिक दिये जायेंगे। किन्तु माल बाहर आते ही दाम गिर जायेगें। यह बात अलग है कि दाम गिरने मे समय लगता है।

यही बात वस्तु के उत्पादन पर लागू होती है। किसी वस्तु का उत्पादन किसी कारण से गिर गया या उसकी अचानक मांग बढ गई तो उस वस्तु की कमी होने पर उसके भाव बढ जायेगें। वस्तु की आपूर्ति होने पर मूल्य फिर सामान्य हो जायेगें। इस प्रकार मंहगाई वस्तु की मांग और पूर्ति पर निर्भर करती है। यह अर्थशास्त्र का मूल नियम है। मुद्रा स्फीति मे ऐसा नही होता या नही हो सकता। महंगाई विश्व युद्व के दौरान बढी थी, क्योंकि युद्ध के लिये आवश्यक वस्तुओ के उत्पादन को प्राथमिकता देने के कारण जन साधारण की वस्तुओं का अपेक्षित उत्पादन नही हो पाता था, किन्तु युद्ध समाप्त होने पर कालांतर मे मंहगाई कम हो जाती थी।

मुद्रा स्फीति पत्र मुद्रा की देन है। पत्र मुद्रा न हो तो मुद्रा स्फीति नही हो सकती। पत्र मुद्रा जारी करते समय पत्र मुद्रा के एवज मे निर्धारित मात्रा मे स्वर्ण भंडार रखना अपेक्षित, बल्कि आवश्यक होता है। भारत मे ब्रिटिश शासन काल के समय तक इसका पालन हुआ था। साथ ही आंतरिक मूल्यवादी मुद्रा भी चलन मे थी। भारत के स्वतंत्र हो जाने पर धीरे धीरे स्वर्ण भंडार कम होने लगा। इसका प्रभाव विशेष रूप मे सन 1990 से दिखाई देने लगा। जब चंद्रशेखर के प्रधान मंत्रित्व मे 40 टन सोना इंग्लैड को गिरवी रखा गया था जो वापस नही आया। इसके विपरीत संसद मे बताया गया था कि सोना छुडा लिया गया है। इसी के साथ नरसिंह राव के प्रधान मंत्री काल मे उनके आदेश से करोडो रूपये की पत्र मुद्रा वैसे ही जारी कर दी गई थी। इस प्रकार मुद्रा स्फीति पत्र मुद्रा की देन है। वास्तविक मूल्य की मुद्रा चलन मे होने पर मुद्रा का अवमूल्यन संभव नही होता। यही कारण रहा कि नरसिंह राव शासन के दौरान और उसके बाद की सरकारो ने स्वर्ण भंडार की बात छोड कर अमरीकी डालर के भंडारण का राग अलापना शुरू कर दिया था और यह बात करके जनता को गुमराह किया गया था। गुमराह इसलिये कि वस्तुतः डालर स्वर्ण का स्थान नही ले सकता। दूसरे न तो डालर के एवज मे स्वर्ण भंडार रखने की व्यवस्था है और न उसका रूपये के साथ कोई लगाव है। आज भारतीय रिर्जव बैक की अधिकृत सूचना के अनुसार रिजर्व बैंक मे केवल 115 करोड रूपये मूल्य का सोना–चांदी और आभूषण हैं, यह एक छलावा है। इससे पूर्व जब मुद्रा स्फीति बहुत हद तक नियंत्रण मे थी, रिजर्व बैक के पास 120 करोड रूपये मूल्य के सोने का भंडार सन् 1964 के सोने के भाव से था, जो लगभग 64 रूपये तोला था। इस प्रकार धुव्र सत्य यही है कि देश मे मंहगाई नही हैं। यह सब सरकार की ओर से रचा गया मुद्रा स्फीति का खेल है। कोई आश्चर्य नही कि यह मुद्रा स्फीति इंडिया को इंडोनेशिया की मुद्रा के बराबर ला खडा कर दे। भारत का रूपया आज भी इंडोनेशिया के रूपये से लगभग 200 गुना अधिक मूल्यवान है।

भारत के स्वतंत्र होने तक देश मे कागज के नोटो के साथ चांदी के रूपये अठन्नी और चवन्नी के सिक्के चलते थे। तब के 1947 के चांदी के एक रूपये का बाजार भाव आज लगभग 900 रूपये है। इस प्रकार तब से मुद्रा स्फीति 900 गुना तो मानी ही जायेगी। परन्तु मुद्रा स्फीति का प्रभाव मौलिक या प्राकृतिक उत्पादन और वैज्ञानिक उत्पादन पर अलग–अलग पडा है। उस समय की कुछ जिन्सो या वस्तुओ के भावो की आज के भावो से तुलना करके मुद्रा स्फीति की बात समझी जा सकती है, क्योकि भिन्न वस्तुओ की दरो का अनुपात भी एक जैसा नही रहा। कुछ उदाहरण प्रस्तुत है।

(दर एक रूपया प्रति ....सेर) गेंहू 1 सेर, चना 16 सेर ग्वार 15 सेर (अब यह कैश क्राप हो गया है और दो सौ रूपये प्रति किलो बिक रहा है)। घी एक रूपया सेर (तब डालडा का जन्म नही हुआ था) दूध चार छः आने सेर सब्जियां औसतन चार आने सेर, ये भाव लगभग है। इन वस्तुओ के आज के भाव से तुलना करके मुद्रा स्फीति का अनुमान लगाया जा सकता है। इसके बावजूद जैसा कि उपर बताया गया है। सन् 1964 मे सोने का भाव 64 रूपये तोला था, तब आज सोना 35,000/ तोले के भाव से मुद्रा स्फीति लगभग 550 हो गई हैं। देखना यह है कि क्या श्रम मूल्य इसी अनुपात मे बढा है या नही ? क्या आम जनता के लिये इसे मंहगांई कहा जाना स्वाभाविक है ? एक बात और– तब आज के दामों को देखते हुए यांत्रिक वस्तुए मंहगी थी, क्योंकि इस क्षेत्र मे पर्याप्त विकास नही हो पाया था। कुल मिलाकर मंहगाई आम आदमी की जरूरत की वस्तुओ के लिये अधिक पैसा देना ही मंहगाई है।

यहां यह विचार आना स्वाभाविक है कि जो विश्लेषण यहां एक साधारण नागरिक दे रहा है वह तथाकथित देश के बडे–बडे अर्थ शास्त्रियों के ध्यान मे क्यो नही है। इसके समाधान मे इतना ही कहना काफी होगा कि उन अर्थ शास्त्रियों के ध्यान से बाते बाहर नही है। किन्तु लोकतंत्र मे ऐसे अर्थ शास्त्रियों का जनता को लूटने का यही श्रेष्ठ साधन या तरीका बनता है। भारत ही नही अन्य लोकतांत्रिक देशो का भी ले देकर यही हाल है। स्वाभाविक है कि लोकतंत्र मे जब कोई साधारण व्यक्ति वीआईपी बनेगा या वहां तक पहुंचने के लिये बडी धनराशि खर्च करेगा और एडी चोटी का जोर लगाएगा तो क्या वह उसका प्रतिफल उसमे से नही चाहेगा ? इस प्रकार निष्कर्ष यही है कि लोकतंत्र मे यह लूट उसका गुण धर्म ही कहा जायेगा।

सरकार को मुद्रा स्फीति से लाभ का एक उदाहरण देख लें– तब आयकर की सीमा 3600/– सालाना थीं। 3600 को 550 से गुणा करने पर 19,80,000/– बनती है किन्तु जो दो लाख भी नही है। जो देश मुद्रा स्फीति की चपेट मे आ जाते है, वे उन देशो के हाथ लुटते है

जहां की मुद्रा कठोर होती है। कारण यह है कि अंतराष्ट्रीय व्यापार का भुगतान तो पत्र मुद्रा के माध्यम से नही होता। वह स्वर्ण के माध्यम से ही होता है। इसका उदाहरण है चीन। अमरीका ने चीन पर उसकी मुद्रा युआन की दर घटाने पर जोर डाला किन्तु चीन नही माना। मै समझता हूँ कि अपनी बात ठीक से प्रस्तुत कर पाया हूँ।

उत्तर– मेरे विचार से मांग और पूर्ति के असंतुलन से अस्थायी रूप से कोई वस्तु महंगी या सस्ती होती है। जिसे वस्तु विशेष का महंगा या सस्ता होना कहा जा सकता है किन्तु यदि सब चीजे महंगी हो जाये तब उसे महंगाई कहेंगे। कुछ वस्तुओं के महंगा होने और कुछ के सस्ता होने को महंगाई नही कहा जा सकता। भारत मे महंगाई शब्द प्रचलित है जिसका अर्थ है सब वस्तुओ का महंगा होना न कि एक वस्तु का। किसी वस्तु का महंगा या सस्ता होने का आंकलन 3 प्रकार के मूल्यो से किया जा सकता है। 1. प्रचलित रूपये के आधार पर 2. सन 1947 के रूपये के आधार पर 3. क्रय शक्ति के आधार पर। यदि मुद्रा स्फीति बढती है और साथ मे क्रय शक्ति भी बढती है तो उसे महंगाई नही कह सकते। स्वतंत्रता के पूर्व एक ओर उत्पादन घटा था दूसरी ओर युद्ध के लिये बडी मात्रा मे नोट छाप लिये गये थे। आम लोगो की क्रय शक्ति उस तरह नही बढी जिस तरह वस्तुओ के मूल्य। इसलिये उस काल खंड मे मंहगाई का बढना कहा जा सकता है। उस काल खंड मे मुद्रा स्फीति भी बढी और महंगाई भी। स्वतंत्रता के बाद के लगभग 66 वर्षो मे रूपये का भौतिक मूल्य लगभग 82 गुना गिरा है। अर्थात सरकारी आंकडो के अनुसार औसत वस्तुओ के मूल्य सन 1947 के रूपये के आधार पर आज के 82 रूपये के बराबर है। तीन वर्षो मे यह 100 रूपये के करीब पहुंच जायेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि उस समय एक रूपये मे एक किलो कोई वस्तु प्राप्त होती थी और आज 82 रूपये मे प्राप्त होती है, तो वह वस्तु न महंगी हुई है या न सस्ती। यदि हम क्रय शक्ति की तुलना करें तो कुल आबादी की एक तिहाई श्रमजीवियों की क्रय शक्ति 164 गुणे करीब बढी है, अर्थात दो गुनी हुई है। एक तिहाई बुद्धिजीवियो की क्रय शक्ति लगभग साढे छः गुना बढी है, अर्थात 8 गुना बढी है। एक तिहाई धन प्रधान लोगो की क्रयशक्ति लगभग पांच हजार गुनी बढ गई है, अर्थात चौसठ गुना बढी है। इस क्रय शक्ति का प्रभाव यह पडा कि श्रमजीवियो और गरीबो के उपयोग मे आने वाली वस्तुओ के आधार पर उनके जीवन स्तर मे दुगुने का सुधार हुआ। जिसका अर्थ हुआ कि उनके उपयोग में आने वाली वस्तुएँ 164 गुना भी बढ जाती है, तो उन पर महंगाई का प्रभाव नही पडता। हुआ ठीक इसका उल्टा कि उनके उपयोग मे आने वाली वस्तुएँ 30–40 गुना ही बढ पायी और इसलिये उनके जीवन स्तर मे 4–5 गुना तक अंतर दिख रहा हैं। एक मजदूर को सन् 1947 मे एक दिन के श्रम के बदले औसत जितना अनाज मिलता था जो आज बढकर एक दिन के श्रम के बदले उससे 5–6 गुना अधिक मिल रहा है। इसका सीधा अर्थ हुआ कि श्रम का मूल्य बढा है, अनाज, कपडा आदि का घटा है और जीवन स्तर 4–5 गुना बढा है। उस समय जो लोग हमारे क्षेत्र मे कोदो, कुटकी, महुआ, गोलनी, सांवा तक खाते थे, वही लोग बाद मे सुधर कर मक्का और जौ खाने लग गये और वही लोग अब गेंहु, चावल खाने लग गये। फिर भी यदि कोई महंगाई का बढना कहता है तो उसे स्वार्थान्ध ही कहा जा सकता है। क्योंकि वह जानबूझकर स्पष्ट देखते हुए भी मंहगाई–मंहगाई चिल्ला कर भ्रम फैला रहा है। उस समय के बुद्धिजीवियो का वेतन अथवा अन्य आय के साधन 4–5 सौ गुना तक बढ गये है। उस समय के बुद्धिजीवी यदि सायकिल का उपयोग करते थे तो आज मोटर सायकिल, टी वी आदि का बेधडक उपयोग कर रहे है। बुद्धिजीवी उस समय जितनी कृत्रिम उर्जा का उपयोग करते थे, आज वे अपने दैनिक जीवन मे कृत्रिम उर्जा का कई गुना अधिक प्रयोग कर रहे है। इसका अर्थ हुआ यदि कोई मिडियम क्लास का व्यक्ति महंगाई से पीडित होने की बात करता है, तो वास्तव मे वह गाली सुनने से कम अपराध नही करता। 33 प्रतिशत आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न वर्ग तो इतना अधिक उपर चला गया कि उसने अपनी बढी हुई 64 गुनी क्रय शक्ति के आधार पर कृत्रिम उर्जा का खुला दुरूपयोग किया। उसका ही परिणाम हुआ कि भारत मे स्वतंत्रता के बाद कुल आबादी 3–4 गुनी ही बढी है, किन्तु आवागमन सैकडो गुना बढ गया। इस उच्च वर्ग की क्रय शक्ति बढने का ही एक परिणाम ये हुआ कि सोना–चांदी और जमीन के मूल्य हजारो गुना उपर चले गये। आज यदि वस्तुओं की मंहगाई का आंकलन करें तो सोना चांदी और जमीन मांग बढने और उत्पादन स्थिर रहने के आधार पर बहुत महंगे हुए हैं। दूसरी ओर डीजल–पेंट्रोल मांग बढने के बाद भी विदेशो से आयात बढाकर तथा बडी मात्रा मे विदेशो से कर्ज लेकर मूल्य वृद्धि नही होने दी गयी। अन्य सभी वस्तुओ का आंतरिक उत्पादन बढा और इसलिये सारी वस्तुए सस्ती हुई हैं। यहां तक कि कुछ इलेक्ट्रानिक वस्तुए जैसे घडी, फांउटेन पेन, रेडियो ट्रांजिस्टर, मोबाइल फोन आदि तो मिटटी के भाव हो गये है। अब आप ही बताइये कि ऐसी स्थिति मे कौन सी ऐसी वस्तु महंगी हो गई है जिसका दुष्प्रभाव किसी भी वर्ग पर पडा हैं। मंहगाई का हल्ला तीन प्रकार के लोग अधिक करते है–1 राजनीतिज्ञ सत्ता परिवर्तन के लिये 2. बुद्धिजीवी अपना वेतन बढवाने के लिये तथा 3. पूंजीपति आर्थिक असमानता पर से ध्यान हटाने के लिये। 33 प्रतिशत श्रम जीवियों के जीवन स्तर तथा क्रय शक्ति मे दो गुने का सुधार। 33 प्रतिशत पूंजीपतियों के जीवन स्तर तथा क्रय शक्ति मे 64 गुने का सुधार किस प्रकार न्यायोचित कहा जा सकता है ? सरकार चाहे किसी की भी रही हो वह बुद्धिजीवी और पूंजीपतियो से मिलकर महंगाई–महॅगाई का प्रचार करती है जो उसके श्रम शोषण के षडयंत्र का ही एक भाग है, आर्थिक असमानता पर से ध्यान हटाकर महंगाई को प्रमाणित करना।

एक प्रश्न और बार–बार उठता है कि भारत के आम लोग महंगाई को महसूस क्यों करते है ? एक टीवी चैनल मे महंगाई की चर्चा हुई तो न महंगाई के समर्थक अगल–बगल मे बैठे दोनो विद्वानो के पास कोई उत्तर था, न श्रोताओ के पास। सब निरूत्तर थे और तब उन्होने एक प्रश्न श्रोताओ के समझ उछाला कि जितने लोग महंगाई का होना स्वीकार करते है वे हाथ उठावें। मै अकेला था और महंगाई के समर्थन मे सारे हाथ उठ गये। मै निरूत्तर था। आखिर क्या कारण है इसका ? मेरे विचार से किसी व्यक्ति को किसी वेतन पर 1 जनवरी को जितना सामान मिलता है और 2 जनवरी को उसका वेतन 10 प्रतिशत बढ जाता है तो उसको 10 प्रतिशत अधिक सामान मिलने लगता है। उसके मन मे अधिक सामान मिलने की कल्पना घर कर जाती`। छः महीने के बाद या एक वर्ष बाद जब उसका वेतन बढता हैं, तब तक उसे मिलने वाली सामान की मात्रा घटकर उस स्थिति तक पहुंच जाती है, जहां उसे दो जनवरी के पूर्व जितना सामान मिलता था। मिलने वाले सामान की प्रतिदिन घटती हुई मात्रा उसे महंगाई का आभास कराती है और अन्य लोग उसकी आभास की पुष्टि कर देते है।

मेरे विचार से महंगाई का एक बहुत ही सीधा और सरल समाधान है कि 100 रूपये के नोट को एक नया रूपया बोलना और लिखना शुरू कर दिया जाय तो मंहगाई अपने आप घट जायेगी। उसके लिये कुछ नही करना पडेगा क्योंकि महंगाई भावनात्मक समस्या है, वास्तविकता से दूर है, और सन 1947 की तुलना मे आज के रूपये का सौ गुना मूल्य परिवर्तन महंगाई को समाप्त कर देगा। यहा तक कि डालर भी 60 नया पैसा मे मिलने लगेगा। करोड पतियों की संख्या अपने आप घट जायेगी। लेनदेन मे लिखा पढी भी कुछ कम हो जायेगी।

बडे– बडे नोटो का प्रचलन रोकने की रामदेव बाबा की बेसिर पैर की मांग भी अर्थहीन हो जायेगी। सच्चाई यह है कि मंहगाई खत्म हो जायेगी । किसी प्रकार का अलग कोई प्रभाव नही पडेगा। फिर से एक पैसा और पचास पैसा जिन्दा हो जायेगा और कम से कम एक अस्तित्वहीन समस्या का प्रभाव हीन समाधान हो जायेगा।

आपने घी, गेंहू, चावल, दूध आदि के 1947 के मूल्यों का ऑकडा दिया है वह मेरी जानकारी के अनुसार गलत है। उस समय घी का भाव एक रूपये की अपेक्षा कई गुना अधिक था और गेंहू का तीन गुना कम, चना का भाव भी एक रूपये का 16 सेर नही था। आप इन ऑकडों का विवरण भेंजेगे तो स्पष्ट होगा क्योंकि गलत ऑकडें भ्रम पैदा करतें हैं।

2. विचार– हरवंश लाल टांक, दुर्ग,छत्तीसगढ। ज्ञान तत्व क्रमांक 12838

राजनीति एंव समाज सुधार की दिशा मे आपके पुरूषार्थ एंव प्रयासों की जितनी प्रशंसा की जा सके कम है। इस बाबत अनेक संगठन तंत्र अलग–अलग बैनर तले अद्वितीय प्रयास कर रहे है। उनके प्रयासो को भी अनदेखा नही किया जा सकता। उनकी कार्यशैली मे चिन्ता हो सकती है, किन्तु भावनाए सुधार की है।

गायत्री परिवार द्वारा इस दिशा मे जो प्रयास किया जा रहा है वह इन सारे तंत्रों से भिन्न है। इसके उपरी कर्म कांड और बाहरी आवरण मात्र को देख कर कोई व्यक्ति इस तंत्र का अध्ययन करेगा तो वह भ्रमित ही होगा। जिन्होनें भी ऋषि के साहित्य के अंदर झॉका है, उसकी जिज्ञासा बढती चली गयी है। मीडिया एंव प्रचार से सर्वथा परे रह कर विज्ञानवादी आध्यात्म और व्यावहारिक सोच के धरातल पर जो कार्य अब तक हो चुका है, उसे आश्चर्य जनक और अद्वितीय स्तर का आंका गया हैं।

इस पत्र के साथ उनके द्वारा 1980 के दशक मे लिखी गई पुस्तिका भेंज रहा हूँ। कृपया इसे पढकर अपनी अभिव्यक्ति अवश्य दीजियेगा। फिर उनका यह चिंतन वर्तमान परिवेश मे कितना प्रासंगिक है अथवा आपके विचार से यह वर्तमान परिवेश के अनुरूप कितना परे है।

उत्तर– आपका पत्र मिला। गायत्री परिवार द्वारा प्रकाशित पुस्तिका भी मिली। मैने उसमें बहुत कुछ पढा भी। मै गायत्री परिवार से पहले भी जुडा रहा। श्री राम शर्मा जी के सम्पर्क में रहा। मै भी आर्य समाज से जुडा रहा हूँ, वे भी जुडे रहे। मै मानता हूँ कि गायत्री परिवार कोई संगठन ना होकर एक धार्मिक संस्था है, जो समाज सुधार, चरित्र निर्माण का कार्य पूरी ईमानदारी से करती है। आर्य समाज भी ऐसा ही करता है, किन्तु आर्य समाज तथा गायत्री परिवार मे कुछ भिन्नता है। आर्य समाज चरित्र निर्माण के साथ–साथ व्यवस्था परिवर्तन पर भी जोर देता है, जो एक सांगठनिक कार्य है। गायत्री परिवार सिर्फ व्यक्ति निर्माण का कार्य करता है। इस मामलें मे राष्टीय स्वयं सेवक का ढांचा इन दोनो से अलग हैं। वह किसी भी रूप मे न संस्था का कार्य करती है न व्यवस्था परिवर्तन का। वह पूरी तरह सत्ता संघर्ष का खेल खेलती है। मुझे खुशी है कि गायत्री परिवर इस गंदे खेल से दूर है। फिर भी मै यह महशूस करता हूँ कि राजनीति जितना समाज मे अपना दुष्प्रभाव छोड रही है उसे रोके बिना गायत्री परिवार जैसी संस्थाओ का मिशन पूरा नही होगा। यदि कुछ लोगो की आदत बन जाये कि वे निर्लज्ज होकर लगातार सडक पर गंदगी करते रहेंगे और हम समाज सुधार के नाम पर उस गंदगी को सिर्फ साफ करते रहेंगे तो कभी ना कभी साफ करने वालो की संख्या घटेगी और गंदगी करने वालो की संख्या बढेगी। मै साफ करने वालो के विरूद्ध नही हूँ किन्तु मै चाहता हूँ कि कोई एक ऐसी संस्था बने जो इन गंदगी करने वालो पर भी रोक लगा सके। मै सफाई करने वालो को निरूत्साहित नही कर रहा किन्तु मै नही चाहता कि सफाई अभियान मे लगे गायत्री परिवार सरीखी संस्थाएं गंदगी करने वालो के अभियान को निरूत्साहित करे। दोनो का उद्देश्य एक है दोनो एक दुसरे के पूरक है, दोनो को एक दुसरे के साथ प्रतिस्पर्धा से बचना चाहिये। आपका पत्र भी ठीक दिशा मे तथा आदरणीय श्री राम शर्मा जी की पुस्तक इस दिशा को स्पष्ट करती है भले ही उनकी मृत्यु के बाद गायत्री परिवार इस दिशा से कुछ अलग होकर सिर्फ समाज सेवा तक सीमित होता गया। राजनीति से दूर रहने के मैं पक्ष मे हूँ किन्तु राजनीतिक गंदगी से दूर रहने के पक्ष मे नही हूँ बल्कि राजनीति मे शामिल हुए बिना उसकी सफाई करने को आवश्यक मानता हूँ। आपने जो पुस्तक भेजी है वह ज्ञान तत्व मे प्रकाशित करने योग्य है और मै उस पुस्तक का प्रकाशन भी इस अंक मे करूंगां।

3 समीक्षा– अखलाक अहमद उस्मानी, के जनसत्ता 26 मार्च 2014 में प्रकाशित लेख की

मैने जनसत्ता 26 मार्च 2014 के अंक मे अखलाक अहमद उस्मानी का धार्मिक कट्टरता संबंधी एक लेख पढा। उन्होनें लिखा है कि सउदी अरब तथा कतर दो केन्द्रो पर खडे होकर ईस्लामिक उग्रवाद की लडाई मे व्यस्त है। दोनो ही चाहते है कि दुनिया उनके साथ जुडे। दोनो ही भारत को अपने साथ जोडना चाहते हैं। इसके लिये वे भारत सरकार पर दबाव बनाते रहते हैं। भारत सरकार भी दोनो पर तालमेल बनाकर रखना चाहते है। किन्तु समस्या तो यह पैदा होती है, जब भारत के इस्लामिक धार्मिक समूह भी आपस मे बंटकर अलग–अलग समूहो मे हो जाते है, और कुछ लोग सउदी अरब के पक्ष मे हो जाते है तो कुछ कतर के। यदि वैचारिक समर्थन तक बात सीमित होती तो, कोई विशेष समस्या नही थी क्योंकि यह तो उनका आंतरिक मामला था। किन्तु समस्या तो पैदा होती है जब दोनो समूह सक्रियता की दिशा मे आगे बढ जाते है। इस संबंध मे भारत के मुसलमानो को गंभीरता पूर्वक सोचना चाहिये।

विद्वान लेखक के विस्तृत लेख को मैने पढा। मेरी सोच कुछ और भिन्न है। यदि कहीं आग हल्की लगी हुई है, तो उसे बुझाने का प्रयास करना चाहिये और यदि प्रचंड अग्नि है, तो उस आग से स्वयं को बचाने का प्रयास करना चाहिये। दोनो प्रकार के निर्णय देश, काल, परिस्थति पर निर्भर करता हैं। मुस्लिम देश आपस मे लड–कट कर बर्बाद होगें, तब धर्म–निरपेक्ष विचार आगे बढ पायेगा। उन्हे तो लडना ही है और वे मानने वाले नही है, तो भारत को चाहिये कि दोनो के साथ समान दूरी रखकर अपने को बचाना चाहिये। वर्तमान भारत सरकार इस मामले मे कुछ ठीक दिशा मे है। फिर भी यदि हम भारत के आंतरिक स्थिति पर विचार करे जिसमे संघ परिवार और इस्लाम के संबंध का प्रभाव भी जुडा हुआ है तो मेरे विचार मे संघ परिवार भी दुनिया मे लड–भिड रहे मुस्लमानो की लडाई मे एक अलग पक्ष बनकर कूदने को आतुर है। रोकने से संघ परिवार मानेगा नही, जिस तरह न सउदी अरब मान रहा है न कतर। तो मेरे विचार मे यदि कट्रवादी मुसलमान आपस मे लडने मरने को उतावले है तो हमे ऐसे लोगो को रोकने के बजाय स्वयं को दूर कर लेना चाहिये। अर्थात मेरा सुझाव है कि मुसलमानो को ऐसे

टकरावो से स्वयं को दूर कर लेना चाहिये जो या तो संघ परिवार के साथ मुसलमानो का टकराव के लिए उतावले हैं अथवा आपस में। या किसी अन्य मुस्लिम संगठनो से। हिन्दुओ को भी चाहिये कि वह संघ परिवार से दूरी बनाकर रखे। किन्तु हिन्दुओ की अपेक्षा मुसलमानो की जिम्मेदारी कई गुना अधिक बढ जाती है। क्योंकि उन्हे तो दोनो मोर्चों पर सफर करना है, और हिन्दुओ को एक मोर्चे पर। दूसरी बात यह भी है कि हिन्दू जन्म से ही धर्म को संगठन से उपर मानता है। इसका अर्थ हुआ कि यदि कोई हिन्दू संघ परिवार से जुडता है तो उसका वास्तविक धर्म परिवर्तित हो जाता है जबकि मुसलमान जन्म से ही संगठन प्रधान होता है और उसे संगठन से दूरी बनाने के लिये अपने संस्कार बदलने पडते है। इस संम्बन्ध में अकलाख भाई ने जो लेख लिखा है वह बहुत संतुलित है और पढने योग्य है।

4. विचार– शिवदत्त बाघा– बांदा उत्तर प्रदेश

आपने ज्ञान तत्व अंक 16 से 28 फरवरी 2014 मे लोक सभा चुनावो की समीक्षा प्रकाशित की है। इसे समीक्षा कहें या किसी विषय विशेष पर एक व्यक्ति की निजी राय, जो अपने पाठक को किसी परिणाम तक पहुंचने मे मदद करती दिखाई नही देती। बकौल समीक्षा, कांग्रेस को दिया गया वोट एक वंश की गुलामी होगी। भाजपा को दिया गया वोट तानाशाही का समर्थन होगा। आम आदमी पार्टी को दिया गया वोट समुद्र मे डालने जैसा होगा। अन्य से तानाशाही का खतरा तो नही है पर समस्याओ का कोई समाधान भी नही है।

पिछले पत्र मे मैने दावा किया था कि इस देश मे लोकतंत्र नही है। बल्कि एकल जातीय राजतंत्र की जगह बहु जातीय राजतंत्र है। जिसका समर्थन 65–66 वर्षो से कान्सटीट्यूशन आफ इंडिया बराबर कर रही है। एक मात्र चुनावो से लोकतंत्र की पुष्टि नही होती चुनाव तो इस व्यवस्था का हिस्सा मात्र है जो सत्ता प्राप्ति की लाइन मे लगे समुदाय, संगठनो गिरोहो, की राह आसान बनाते है। दूसरा पक्ष लोकतंत्र का वह है जिसे आम आदमी के हित मे, जमीन मे, शासन–प्रशासन के व्यवहार मे अलग दिखना चाहियें।

आतंकवादियो, नक्सलवादियो मे कम से कम इतनी तो नैतिकता है कि जो हत्याएं वे कर रहे हैं, उनकी वे जिम्मेदारी लेते है। परन्तु इस तथाकथित लोकतांत्रिक व्यवस्था के संचालको के पास इतना भी नैतिक साहस नही है, कि इनकी अव्यवस्था मे जो हत्याए हो रही है उसकी जिम्मेदारी ले। कर्ज तले दबे देश के, तीन लाख किसानो ने आत्म हत्या कर ली। बीमारी से दम तोड दिये, साधनो की कमी से दम तोड दिये, सुरक्षा नही तो मारे गये। सरकार बनाने मे ये भी मतदाता रहे होगें पर इनके ही तंत्र मे इन्हे क्या मिला?

लोक तंत्र के मुखौटे की आड मे ही सत्ता के दावेदार वे ठहराये गये जिन्हे विदेशी ताकतो के इशारे पर इस देश के जीवन मूल्यों, आदर्शो, उद्देश्यो व इसके अस्तित्व को मिटाने का कार्य इंच दर इंच करना था। उनके वारिस लोकतंत्र की आड मे इसे अंजाम तक पहुंचा रहे हैं।

उत्तर– मैने ज्ञानतत्व अंक 284 मे व्यक्तिगत रूप से अपनी राय बताते हुए समीक्षा की है न कि कोई निश्चित निष्कर्ष दिया है या आप सबको कोई सलाह दी है। मैने सबके गुण दोषों की समीक्षा की है। मैने वर्तमान लोकसभा चुनाव मे न कोई निष्कर्ष निकाला है न कोई समाधान दिया है क्योकि मेरा निष्कर्ष और समाधान तो यह है कि लोकतंत्र लोक नियुक्त से लोकनियंत्रित तंत्र मे बदलना चाहिये। उस दिशा मे आप पार्टी आंशिक रूप से बढने की बात करती है बाकी तो कोई बात भी नही करता। मैने ''आप'' के वोट को समुद्र मे डालने की बात जो लिखी है उसके आधे अंश को आपने लिखा है परन्तु आपने उसी लाइन के अंश मे लिखा ''आप'' को दिया गया वोट सार्थक भी हो सकता है, और निरर्थक भीं, आत्म ग्लानी से बचाएगा को साथ में नही लिखा। आपने आधे अंश को लिखकर अपनी निष्पक्षता को शंका मे डाला है।

आपके विचार मे भारत मे लोकतंत्र नही है। मै नही समझता कि आधे भरे हुए ग्लास को खाली गिलास कहना भी उतना ही गलत है जितना भरा गिलास कहेंगे। भारत मे लोकतंत्र नही है यह कहना उचित नही है क्योकि लोकतंत्र की एक सबसे बडी पहचान होती है, कि उसमे ब्यक्ति को मौलिक अधिकार प्राप्त होते है। मौलिक अधिकार न इस्लामिक देशो मे प्राप्त है, न साम्यवादी देशो मे, न राजतंत्रो मे और न ही तानाशाही के देशो मे। भारत मे प्रत्येक व्यक्ति को अब तक मौलिक अधिकार प्राप्त है। मै यह मानता हूँ कि यह भारत का लोकतंत्र अधूरा है। आपने लोकतंत्र को एकल जातीय राजतंत्र की जगह बहुजातीय राजतंत्र की संज्ञा दी है। वह मेरे समझ मे नही आया कि आपका आशय क्या है। मुझे तो आश्चर्य हुआ कि आपने आत्म–हत्या, साधनो की कमी से दम तोडने वाले, या भूख से मरने वालो को सरकार द्वारा की गई हत्या के साथ जोडा है। जबकि मेरे विचार मे अपकी सोच गलत है। सरकार का दायित्व न आत्महत्या रोकना है, न ही भूख से मरना रोकना, न ही अन्य कार्य। ये कार्य तो राज्य के अतिरिक्त कर्तव्य माने जाते है। राज्य के दायित्व तो सुरक्षा और न्याय होता है। जिसकी आपने कोई चर्चा ही नही की। नक्सलवादियो द्वारा की गई हत्याए रोकना राज्य का दायित्व है न कि स्वैच्छिक कर्तव्य। नक्सलवादियों से सुरक्षा राज्य नही कर पा रहा है उसके लिये राज्य को जिम्मेदार ठहराने की अपेक्षा आपने नक्सलवादियो की प्रशंसा करके कही न कही भूल की है। कोई व्यक्ति अपराध करे और खुले आम स्वीकार कर ले वह उस व्यक्ति से अच्छा नही हो सकता जो अपराधी को दंडित करने का दायित्व पूरा नही कर रहे। मुझे लगता है कि इन विषयो पर आपके विचार और अधिक विस्तार से जानने की आवश्यकता है। मै समझता हूँ कि दायित्व पूरा न करके कर्तव्य करना या कर्तव्य के आधार पर उस इकाई का आंकलन करना उचित नही। यदि सौ लोगो की जान बचाने के लिये एक निर्दोष व्यक्ति के प्राणो की आवश्यकता है तब भी उसकी सहमति के बिना उसकी प्राण लेना लोकतंत्र नही है क्योकि लोकतन्त्र में मौलिक अधिकारों की सुरक्षा की गारंटी संविधान देता है, और संविधान की रक्षा राज्य करता है।

विशेष विचार

राजनीति मे हमारी भूमिका –पंडित श्री राम शर्मा आचार्य, गायत्री परिवार ।

शक्ति की समीक्षा– राजनीति ने आज मानव जीवन के सभी क्षेत्रो पर अधिकार कर लिया है। इसलिये इसका महत्व बहुत हो गया हैं। प्राचीनकाल मे न्याय और व्यवस्था तक ही शासन का हस्तक्षेप होता था, पर अब उसका क्षेत्र बहुत बढ गया है, और जीवन के हर पहलू को राजनीति प्रभावित करती है। शिक्षा, उत्पादन, श्रम व्यवसाय, शासन, न्याय, निर्माण, विज्ञान, शिल्प आदि तो पहले से ही उसके नियंत्रण मे पहुंच

चुके है। धीरे–धीरे जीवन का हर क्षेत्र राजनैतिक प्रभाव के अंतर्गत आता चला जा रहा है। जहां अधिनायक वाद का प्रधान्य है वहां तो जनता को शासनतंत्र की मशीन का एक पुर्जा मात्र बनकर रहना पडता है। जानने सोचने और निष्कर्ष निकालने तक के साधन लोगो के हाथ मे नही रहते। प्रचार का संपूर्ण उपकरण सरकार के हाथ मे रहने से जनमानस को शासन जिधर चाहे उधर मोडता बदलता रहता हैं। ऐसी दशा मे यह स्वीकार कर लेना चाहिये कि आज राजनीति की शासनतंत्र की प्रबलता सर्वोपरि बनती चली जा रही है और कल वह समय आयेगा जब व्यक्ति शासन के हाथ का खिलौना मात्र बनकर रह जायेगा।

जन जीवन मे अपनी प्रमुखता रखने वाली राजनीति मे शासन तंत्र मे, यदि कहीं दोष रहते है तो उसका दुष्परिणाम सर्वसाधारण को बुरी तरह भोगना पडता है। वर्तमान स्थिति मे जबकि जन साधारण की नैतिक स्थिति निम्न स्तर की ओर गिर रही है, शासन तंत्र के संचालको का उच्च चरित्र से, उच्च आदर्शो से पूर्ण होना आवश्यक है।''यथा राजा तथा प्रजा'' की उक्ति असत्य नही है। बडो को देखकर छोटे उनसे प्रभाव ग्रहण करते हैं अनुकरण के लिये अग्रसर होते है। प्राचीनकाल मे संतो ऋषियो और ब्राम्हणो का राजा और प्रजा सब पर नियंत्रण था। उसका व्यक्तित्व उंचा माना जाता था इसलिये जनता उनकी भावनाओं और प्रेरणाओ से प्रभावित होकर अपनी दिशा निर्धारित करती थी।
अब वह स्थान शासन संचालको को मिल रहा है। उन्ही के वक्तव्यो, भाषणो, गतिविधियों और योजनाओ से अखबार रेडियो पुस्तकें भरे रहते है। सभा सम्मेलनो मे उन्ही की चर्चा प्रधान रूप से होती हैं, जन चर्चा का विषय वे ही है। किसी बिगाड या सुधार के लिये उन्ही को उत्तरदायी माना जाता है। इतनी उंची स्थिति जिस वर्ग ने प्राप्त कर ली है, उन शासन संचालको का प्राचीनकाल के संतो और ऋषियो के समान ही आदर्श होना चाहिये, अन्यथा राज्य कर्मचारियो पर ही नही, जन साधारण पर भी उसकी प्रतिक्रिया होगी । हीन चरित्र का शासक वर्ग कभी भी जन प्रेरणा का प्रकाश स्तंभ नही बन सकता।

देशगत राजनीति पर विचार किया जाये या अंतराष्ट्रीय राजनीति पर सभी क्षेत्रो से उच्च चरित्र के मार्गदर्शक की नितांत आवश्यकता अनुभव की जा रही हैं इसी कमी के कारण समस्त विश्व की जनता क्षुब्ध और निराश होती जा रही है।
संसार के राजनीतिज्ञो के पास सारे साधन मौजूद है। उच्च शिक्षा सुविकसित मस्तिष्क, चतुर सलाहकार, विज्ञान, जन सहयोग सभी कुछ तो उन्हे प्राप्त है। कमी केवल उदारता और भावनाओं की है। काश, आज की दुनिया का नेतृत्व किन्ही महापुरूषो के हाथ रहा होता। काश, गांधी, ईसा, बुद्ध, सुकरात, कन्फयुशियस सरीखी आत्माओ के हाथो शासनाध्यक्षों का कार्य संचालित हुआ होता तो दुनिया आज की तरह नरक की स्थिति मे पडी न रहकर स्वर्ग बन गई होती। काश, राजनीति ने कूटनीति धूर्तता का रूप छोडकर धर्मनीति बनना स्वीकार किया होता तो आज सर्वत्र शान्ति प्रेम और आनंद की ही निर्झरिणी बह रही होती।

सम्पन्नता, शिक्षा, कला, विज्ञान एंव चतुरता बढ रही हैं, पर चरित्र बल घट रहा है। संसार मे शासन तंत्र अधिक शक्तिशाली बनते चले जा रहे है पर उनकी वह विशेषता घट रही है जिसके प्रभाव से जनमानस मे प्रेरणा और आशा का संचार होता है। आज जबकि जन जीवन के सारे साधन राजनीति के प्रभाव क्षेत्र मे चले जा रहे हैं तो यह आवश्यक है कि उसके नेता एंव संचालको का व्यक्तित्व चरित्र एंव भावना का स्तर इतना उंचा हो कि दण्ड भय से नही श्रद्धा से अवनत होकर लोग उनका अनुसरण करने लग जाये । इसी से जन जीवन मे सच्ची प्रगति का संचार हो सकता है। यदि यह क्षेत्र दुर्बल बना रहा ''बिल्ली के गले मे घंटी न बंध सकी'', तो भ्रष्टाचार की स्थिति ज्यो की त्यो बनी रहेंगी। जनता सरकार को दोष देती रहेगी और सरकार जनता का कसूर बताती रहेगीं समस्या जहां की तहां उलझी पडी रहेगी। अनीति को रोकना और साधनो को बढाना शासन का कार्य है। सबको समान अवसर तथा समान न्याय प्राप्त कराना राजकीय उत्तरदायितव माना गया है। इन उत्तरदायित्वो को पूरा करने के लिये राज्य कर्मचारियों को न्याय और कानून के प्रति नितांत निष्ठावान निर्लोभी, निष्पक्ष एंव कर्तब्यपरायण होना चाहिये। कानून तो पुस्तको मे बंद रहते है। उनका पालन करना और कराना कर्मचारियों का काम है। उनका चरित्रवान एंव उच्च आदर्शवादी होना ही प्रजा की सुख शान्ति की गारंटी हो सकती है। यदि वह शासक वर्ग अपने कर्तब्यो और उत्तरदायित्वो की उपेक्षा करेगा तो प्रजा का न्याय पर से विश्वास कम होता चला जाएगा और हर क्षेत्र मे अनीति पनपेगी, भ्रष्टाचार बढेगा तथा निर्भय होकर नाना प्रकार के अपराध करेगा। राज्य कर्मचारियों की कर्तब्यपरायणता को एक ओर रखकर तौला जाय, तो कर्मचारियों की इमानदारी ही अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध होगी। इसके अभाव मे नाना प्रकार की योजनाएं बनती बिगडती रह सकती है, पर जनहित समस्या का ठीक समाधान न हो सकेगा।

शक्ति के साथ पवित्रता जरूरी–राजनीति की शक्ति निश्चय ही महत्वपूर्ण है। उसका सुसंचालन जनता के लिये सब प्रकार श्रेयस्कर हो सकता है। संसार के जिन देशो का इन दिनो उत्कर्ष हुआ है, उसमे वहां की सुयोग्य सरकारो का बडा श्रेय है। राजनीतिज्ञों में सूझ–बूझ, कुशलता क्षमता–योग्यता का होना आवश्यक है। इसके बिना शासन तंत्र ठीक प्रकार नही चल सकता। पर इससे भी अधिक आवश्यकता है शासको की ईमानदारी। यदि वे आदर्शो के प्रति निष्ठावान होगें, व्यक्तिगत जीवन मे पवित्रता और सेवा का व्रत धारण किये हुए होंगे, तो कम योग्यता होने पर भी उनके कार्यो से जनता का अत्यधिक हित साधन होता चलेगा।

जिन लोगो की दिलचस्पी राजनीति में है उनका कर्तव्य है कि प्रशासन के हर क्षेत्र मे ईमानदारी और आदर्शवादिता उत्पन्न करने का प्रयत्न करें। राजनीतिक दलो मे से प्रत्येक की नीतियां और घोषणाऍं उत्तम है। इनमे से किसी का भी सहारा ईमानदारी के साथ लिया जाये तो उससे देश का उत्थान ही हो सकता है। नीतियां किसी भी पार्टी की बुरी नही कही जा सकती। संसार के विभिन्न देशो ने विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम अपनाकर उन्नति की है। इसलिये आवश्यकता तो इस बात की है कि राजनीति के मर्मस्थल पर हमारा ध्यान हो। नेतृत्व उन लोगो के हाथ मे सौपा जाये जो आदर्शवाद से अपने जीवन का हर पहलू ओत–प्रोत किये हुए रह सकें। सार्वजनिक जीवन और व्यक्तिगत जीवन इस प्रकार के दो भेद करना उचित नही। वस्तुतः चरित्र की सच्ची परीक्षा व्यक्तिगत जीवन मे होती है। जो मनुष्य व्यक्तिगत जीवन मे दुराचार करता होगा और भ्रष्ट परंम्पराऍं अपनाता होगा वह सार्वजनिक जीवन मे ईमानदार रह सके, यह कदापि सम्भव नहीं।

शासन की पवित्रता उतनी ही आवश्यक है जितनी धर्म पुरोहित की सदाचारिता। प्रजातंत्र पद्धति के शासन मे हर मतदाता का परम पवित्र कर्तव्य है कि वोट देते समय किसी लोभ या पक्षपात से प्रेरित होकर मतदान न करे वरन् आदर्शवादी व्यक्तित्यों को ही सर्वोपरि स्थान दें, और यह भी देख–रेख रखे कि शासन तंत्र मे चरित्र भ्रष्टता तो बढने नही लगी। यदि किसी राष्ट्र को अपना स्वस्थ विकास करना हो तो शासन तंत्र की सच्चरित्रता का पूरा ध्यान रखे। प्रजा की ओर से अधिकारियो को प्रलोभन देकर कोई अनुचित कार्य कराने का प्रयत्न न किया जाय,

और कर्मचारी जनता को परेशान करने की शक्ति का दुरूपयोग करके जनता के शोषण की विवशता उत्पन्न न करने पायें। ऐसी व्यवस्था बनाना उन लोंगों का कार्य है जिनके कन्धे पर शासन तन्त्र चलाने का उत्तरदायित्व पडा हुआ है।

राजनैतिक दृष्टि से हम सफल हुए या असफल ? इसका एक ही प्रमाण हो सकता है कि शासनतन्त्र के संचालकों और नागरिकों में कर्तव्यपरायणता एवं नैतिकता कितनी बढी ? इस कसौटी पर जो शासन खरा उतर सकेगा, उसे ही इस राजनैतिक सफलता का श्रेय मिलेगा। इतिहास साक्षी है कि जब भी, जहॉ भी, नैतिक दिवालियापन बढा है, तब उसका परिणाम सर्वनाश के रूप में प्रस्तुत हुआ है। इसलिए यदि राजनीति की प्रचण्ड शक्ति से राष्ट्र को लाभान्वित करना अभीष्ट हो, तो एक ही काम पर सर्वोपरि ध्यान रखें और वह है शासकीय कर्मचारियों की सजन्नता एवं उसके फलस्वरूप जनता में उत्पन्न होने वाली उत्साहवर्द्धक प्रतिक्रिया। राष्ट्र इसी नीति पर चलते हुए उठते और बढते है।

धर्मतंन्त्र का सहगमन जरूरी– लोग एक प्रश्न अक्सर करतें रहतें हैं कि ''हम राजनीति के क्षेत्र में प्रवेश क्यों नही करते ? और राजतन्त्र को अपने अनुकूल सरकारी स्तर पर वह सब सहज ही क्यों नही करा लेते ? जिसके लिए इन दिनों इतनी अधिक माथापच्ची कर रहें हैं। ''इस सुझाव के पीछे अपनी–अपने संगठन की वह क्षमता और व्यापकता है, जिसका वही मूल्यांकन कर सकने वाले लोग अनुभव करते हैं कि इन दिनों अपना तन्त्र किसी भी राजनैतिक, सामाजिक या धार्मिक तन्त्र से कम प्रखर एवं कम सशक्त नही है।

वर्तमान युग में राजनीति की सर्वोवरि सत्ता और महत्ता को स्वीकार करने में हमें कोई आपत्ति नही है। यह स्वीकार करने में हमें कोई अडचन नही है कि सरकारें यदि सही कदम उठा सकें, सूझ–बूझ से काम लें, और अपने कियातन्त्र को सुव्यवस्थित रख सकने में समर्थ हों, तो वे अपने क्षेत्र में आश्चर्यजनक प्रगति कर सकती हैं। जापान, चीन, रूस, जर्मनी, अरब, इजराइल आदि ने चन्द दिनों के भीतर अपने ढंग से अपनी योजना अनुसार अभीष्ट परिवर्तन के प्रकार प्रस्तुत कर लिए। हम उन लोंगों में से नही हैं जो वास्तविकता की ओर से जान–बूझकर ऑखें बन्द कियें रहें। धर्म का राजनीति से कोई सम्बन्ध नही, यह दूसरें ने भले कहा हो हमने यह शब्द कभी नही कहे हैं। इतिहास ने हमें सिखाया है कि धर्म की स्थापना में राजनीति का सहयोग आवश्यक है और राजनीति के मदोन्मत्त हाथी पर धर्म का अंकुश रहना चाहिए। दोनों एक–दूसरे के विरोधी नही, पूरक हैं।

इतिहास साक्षी है कि गुरू वशिष्ठ के मार्गदर्शन और रघुवंशियों के शासन क्रम में उस सतयुग की स्थापना की थी, जिसे हम राम राज्य के नाम से आदर के साथ याद करते हैं। चाणक्य के मार्गदर्शन से गुप्त साम्राज्य पनपा, फैला और परिपुष्ट हुआ था। पाण्डवों का मार्गदर्शन कृष्ण ने किया था और दुशासन का उन्मूलन कर सुशासन की स्थापना की थी। राजा मान्धाता का सहयोग शंकराचार्य की दिग्विजय का महत्वपूर्ण आधार था। भगवान बुद्ध के प्रभाव से सम्राट अशोक का बदलना और अशोक सत्ता के सहयोग से बुद्ध धर्म का समस्त एशिया में फैल जाना एक ऐसी सच्चाई है, जिससे इन्कार नही किया जा सकता। समर्थ गुरू रामदास जानते थे कि धर्म प्रवचनों से ही काम चलने वाला नही है, सुशासन की स्थापना भी आवश्यक है। अस्तु उन्होनें शिवाजी जैसे अपने प्रधान शिष्य को इस मार्ग पर अग्रसर किया। गुरूनानक का पंथ एक प्रकार से स्वाधीनता में ही बदल गया। उन्होनें ''एक हाथ में माला और एक हाथ में भाला'' का आदर्श प्रस्तुत करके यह बता दिया कि राजतन्त्र और धर्मतन्त्र को विरूद्ध दिशाओं में नही चलने देना चाहिए।

भगवान का धर्म से ही सीधा संम्बन्ध जुडता है पर अधर्म के अभिवर्द्धन के प्रधान कारण दुःशासन को बदलने के लिए वे समय–समय पर अवतार करते हैं। द्रोणाचार्य कहते हैं कि –हम वेदों को आगे रखकर लोंगों को समझाने और सन्मार्ग पर लाने का प्रयत्न करते हैं। साथ ही पीठ पर धनुष–बाण भी रखते हैं। दोनो शक्तियों के समन्वय से ही समस्याऐं सुलझती हैं।

उपर्युक्त सत्य का प्रतिपादन करने वाले तथ्यों से इतिहास के पन्ने भरें पडे हैं। महात्मा गॉधी जिन्हें इस युग का धर्म पुरूष कह सकते हैं, अपनी जीवन साधना से राजनीति का प्रधान समन्वय करके यह आदर्श प्रस्तुत करते रहे हैं कि धर्म और राजनीति एक–दूसरे के विरोधी नही पूरक हैं। लोकमान्य तिलक, महामना मालवीय, स्वामी श्रद्धानंद जैसे धर्मवेत्ता मनीषियों ने अपनी धर्म साधना के साथ राजनीति को भी अविच्छिन्न रूप से जोडे रखा।

शासन आज जिस तरह जीवन के हर पक्ष में प्रवेश करता चला जाता है और धीरे–धीरे व्यक्ति जिस तरह राज्य की कठपुतली बनने जा रहा है, उस बारीकी को समझने वाला कोई सूक्ष्मदर्शी व्यक्ति राजनीति से सर्वथा धर्म की कल्पना भी नही कर सकता। जो धर्म को राजनीति से अलग होने की बात कहते हैं उन्हें नितान्त भोला ही कहा जा सकता है। प्रतिकूल राजनीति में धर्म को जीवित रहना भी सम्भव नही। रूस, चीन, आदि साम्यवादी देशों में धार्मिकता की कैसी दुगर्ति हुई है यह सबके सामने है। तिब्बत का धर्म शासन करने वाले लामाओं को राजनैतिक प्रतिकूलता ने कहॉ से लाकर कहॉ पटक दिया। राज्याश्रय पाकर ईसाई चर्च कितनी प्रगति कर रहा है और मध्य युग में राज्याश्रय ने इस्लाम धर्म के विकसित होने में कितनी सहायता की ? इन तथ्यों से कोई मूर्ख ही ऑखें मींच सकता है।

हमारी दिशा धारा– इस सन्दर्भ में हमारा मस्तिष्क बहुत साफ है। शीशे की तरह उसमें पूर्ण स्वच्छता है। बहुत चिन्तन और मनन के बाद हम एक निष्कर्ष पर पहुॅचें हैं और बिना लाग–लपेट, छिपाव एवं दुराव के अपनी स्वतन्त्र नीति निर्धारण करने में समर्थ हुए हैं। हम सीधे राजनीति में प्रवेश नही करेंगें। हम राजनीति को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएंगें और यही अन्त तक करते रहेगें। अपना संगठन यदि अपने प्रभाव और प्रकाश को सर्वथा तिरस्कृत नही कर देता, तो उसे भी इसी मार्ग पर चलते रहना होगा।

भारत की वर्तमान राजनैतिक रीति–नीतियों, शासन की गतिविधियों और तन्त्र की कार्यप्रणाली पर आमतौर से सभी को असन्तोष है। स्वतंन्त्रता प्राप्ति के बाद कई वर्षो की लम्बी अवधी में जो हो सकता था वह नही हुआ। तथाकथित आर्थिक प्रगति की बात भी विदेशी ऋण और युद्ध स्थिति तक बढती हुई बेकारी गरीबी को देखते हुए खोखली है। नैतिक स्तर उपर से नीचे तक बहुत गिरा है। गरीब अधिक गरीब बनें हैं और अमीर अधिक अमीर। शिक्षा की दिशा में घोर निराशा ही हुई है। अपनी इस राजनैतिक और प्रशासकीय असफलता पर हम में से हर कोई चिन्तित और दुःखी है। जिन्हें अधिक क्षोभ है, वे उदाहरण प्रस्तुत करते शासन–कर्ताओं की कटु शब्दों में भर्त्सना करते सुनतें हैं और अमुक पार्टी को हटाकर अमुक पार्टी के हाथ में शासन सौंपनें की बात का प्रतिपादन करतें हैं।

हमारे चिन्तन की दिशा अलग है, हम अधिक बारीकी से सोचतें हैं। शासन की असफलता से हम दुःखी हैं। हमें बहुत खेद है कि विगत कई वर्षो में जितना बढा जा सकता था, उतना नही बढा गया। प्रगति कुछ भी न हुई हो सो बात नही, पर गॉधी जी के धर्म राज्य की, रामराज्य और विश्व मंगल की आध्यात्मिक प्रगति तो अभी लाखों मील आगे की बात है।

गॉधी जी की दृष्टि– इन विभिन्न परिस्थितियों से देश को उबारने के लिए यों छुट–पुट प्रयत्न बहुत पहले से चल रहे थे पर उन्हें सुसंगठित और सुसंचालित होने का श्रेय गॉधी जी के नेतृत्व को मिला। वे असली कारण जानते थे और प्रयत्नशील थे कि रचनात्मक कार्यो और बौद्धिक जागरण, स्वतंन्त्र चिन्तन के माध्यम से प्रजा के मनोबल, चरित्र स्तर, स्वाभिमान एवं शौर्य को जगाया बढाया जाए। स्वतंन्त्रता संग्राम वे धीरे–धीरे चला रहे थे। क्रॉन्तिकारियों से उनके मतभेद का मूल कारण यह था कि वे चाहते थे स्वराज्य धीरे–धीरे उस क्रम से आये जिस क्रम से देश उसे सॅभालने योग्य प्रतिभा अपने में पैदा कर ले।

स्वतंन्त्रता संग्राम के साथ चरखा, खादी, हरिजन सेवा, ग्रामोदयोग, राष्ट्रीय शिक्षा, सफाई जैसी प्रवृत्तियों को जोड देना यों बहुत अटपटा लगता है। असहयोग आन्दोलन और सत्याग्रह की दार्शनिकता कितनी ही उॅची क्यों ना हो ? पर उसका व्यवहारिक पक्ष यह था कि इन सरलतम उपायों द्वारा जनता अपनी मूल चेतना विकसित करे और स्वराज्य धारण कर सकने में समर्थ हो जाये। वे जानते थे कि विभूति प्राप्त करने से अधिक कठिन उसे पचाना होता है। शक्ति की असली परीक्षा कोई सफलता प्राप्त कर लेना भर नही है; वरन् उसके सदुपयोग से ही प्राप्तकर्ता का गौरव ऑका जाता है। भागीरथ गंगा अवतरण की पृष्ठभूमि बनाने में सफल हो गये थे, पर उस धारा को सुव्यवस्थित रूप में प्रवाहित करने के लिए शंकर जी को अपनी जटाऍ फैलानी पडीं। यही सर्वत्र होता है। क्रॉन्तिकारी कहते थे कि शस्त्र धारण किये बिना अंग्रेज जाने वाले नही हैं। बात उन्ही की सच निकली। सन् 1942 में क्रॉन्तिकारी तोड–फोड ने सिद्ध कर दिया कि असहयोग सत्याग्रह नही शस्त्र धारण ही वर्तमान स्थिति में राज क्रॉन्तियों की अनिवार्य आवश्यकता है। इस तथ्य को गॉधी जी भी जानते थे। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों ने जब भारत को स्वराज्य दिला ही दिया था, तो वे इन असामयिक उपलब्धियों से जितने प्रशन्न थे, उतने ही चिन्तित भी। जन–जागरण का प्रायोजन पूरा नही हो सका था। इसलिए उन्हें चिन्ता थी कि इस गंगावतरण का सुसंचालन कैसे होगा ?

उन दिनों उन्होंने एक अति महत्वपूर्ण सुझाव रखा था कि कॉग्रेस लोकसेवी संस्था का रूप धारण करे और जन जागरण के नितान्त आवश्यक कार्यों में ही जुटी रहे। राजतंन्त्र चलाने के लिए एक उस स्तर के लोगो की पिछली पंक्ति बना दी जाए। प्रजा पर प्रभाव रखकर कॉग्रेस, राजनेताओं की नियुक्ति एवं उनकी रीति–नीति पर नियंत्रण करे, पर स्वयं उससे पृथक रहकर वह जन–मानस के परिष्कार का मूल प्रायोजन पूरा करे, जो किसी राष्ट्र की सर्वतोमुखी प्रगति का यहॉ तक कि सुशासन का भी मूल आधार है।

चूक हुई, दिशा बिगडी– उन दिनों परिस्थितियॉ विचित्र थीं। कॉग्रेस नेता गॉधी जी से सहमत न हो सके। सारी शक्ति राजतंन्त्र को सॅभालने में लग गई। रचनात्मक कार्यों में विश्वास करने वाले लोकसेवी भी उसी तंन्त्र में खप गए। सबका ध्यान सत्ता की ओर चला गया। सत्ता एक नशा है, उसका चस्का जिसे लगा कि फिर वह उसी घाट का हो लिया। कॉग्रेस और उसका परिवार उसी दिशा में चल पडा। जन जागरण के लिए जिन रचानात्मक एवं संघर्षात्मक कार्यक्रमों की जरूरत थी। वे या तो विस्मृत हो गये या उनकी लकीर पिटती रही। अन्य छोटी–बडी राजनैतिक एवं सामाजिक स्तर की संस्थाओं का भी यही हुआ। उन्होनें भी अपनी बडी बहन का अनुकरण किया। अपना बाहरी जामा वे कुछ भी बनाये रही हों, भीतर ही भीतर सत्ता संघर्ष के लिए चल रही विभिन्न पाटिर्यों की प्रतिद्वन्द्विता में ही वे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में शामिल थीं। ध्यान बॅटा सो बॅटा। पिछले कई वर्षो में जिस बौद्धिक, नैतिक एवं सामाजिक क्रॉन्ति की जरूरत थी, शिक्षा और कला के महान माध्यमों को सृजनात्मक दिशा मे लगाने के लिए उन्हें हथियाना या अपनाया जाना चाहिए था, उस दिशा में किसी ने कुछ नही किया। इस भूल को हम ईमानदारी से स्वीकार कर लें, तो कोई हर्जा नही है।

दिशा भूलने का जनमानस में हजार वर्ष की गुलामी की कुसंस्कारी प्रक्रिया को हटाने की उपेक्षा करने का जो परिणाम होना चाहिए था, वह सामने है। उन परिस्थितियों, उत्कृष्ट राजनेतृत्व एवं आदर्श शासन तन्त्र की आशा रखना व्यर्थ है। राजनेताओं का चुनाव होता है। चुनावों द्वारा प्रतिनिधि चुने जाते हैं और उनके चुनाव से सरकारें बनती हैं। जनता का जो स्तर है उसमें चुनाव जीतने के लिए पैसे को पानी की तरह बहाने की जॉति–पॉति के नाम पर लोगों को बरगलाने की, व्यक्तिगत या स्थानीय लाभ दिलाने के सब्जबाग दिखाने की अनिवार्य आवश्यकता पडती है। जो यह सब तिकडमें भिडाने में समर्थ न हों, उसका चुनाव जीतना कठिन है। जनता का स्तर ही ऐसा है कि वह वोट का मुल्य और उसके दूरगामी परिणामों को अभी समझ ही नही पायी। इसलिए चुनाव में वे लोग जीत न सके, जो रामराज्य स्थापित कर सकने में सचमुच समर्थ हो सकते थे। जनता ने अपने स्तर के विधायक चुने। उन विधायकों ने अपने स्तर की सरकारें बनायीं, उन सरकारों के संचालकों ने वही किया जो जनता कर रही है या कर सकती है। जड के आधार पर पत्तें बनतें हैं। धतूरे के बीज से उगे पौधे पर शहतूत कहॉ से लगें ?

राज्य शासन के संचालन में जो व्यक्ति काम करतें हैं, उनकी मनोभूमि एवं कार्यशैली ही शासन तन्त्र के संचालन का स्वरूप निखारती है। सरकार कई .योजनाऍ बनाती और चलाती है, पर उसका स्वरूप जनता तक पहुॅचते–पहुॅचते विकृत हो जाता है, क्योंकि जिनके हाथ में उस प्रक्रिया के संचालन का भार है, वे उतने शुद्ध नही होगें, जितने होने चाहिए।

अपराधों के रोकने की जिम्मेदारी जिस मशीन पर है यदि उॅचे स्तर की हो और भावनापूर्वक काम करे, तो निस्सन्देह अपराधों का उन्मूलन हो सकता है उपयोगी कार्यों के लिए ऋण या अनुदान बॉटने वाली मशीन यदि स्वच्छ हो, तो वह धन सचमुच सम्पति और सुविधा बढाने में समर्थ हो सकता है। शिक्षा देने वाली मशीन यदि भावनाओं से ओतप्रोत हो तो छात्रों को ढालने में उन व्यक्तियों का जादू आश्चर्यजनक ढलाई का प्रतिफल प्रस्तुत कर सकता है। सरकारी कानूनों या योजनाओं में दोष नही है जितना कि प्रस्तुत प्रक्रिया का संचालन करने वाली मशीनरी की आदर्शवादी भावनाओं का न्यूनतम रूप है।

अब करना है भूल सुधार– प्रश्न उत्पन्न होता है कि यह शासन संचालन करने वाली मशीन कैसे उत्कृष्ट बने ? सरकारी कर्मचारी आकाश से नही उतरते। वे जनता के ही बालक होतें हैं। उनने अपने घर–परिवार से सम्बद्ध समाज में जो कुछ देखा, सुना, समझा, अनुभव किया है, उसी के आधार पर उनका मानसिक स्तर एवं चरित्र ढला है। नौकरी पाते ही वे उन संस्कारों को भुलाकर देवता बन जायें, यह आशा करना व्यर्थ है। एक सच्चाई है कि प्रजातन्त्र में जनता के स्तर की ही सरकार बनती है और उसी स्तर की सरकारी मशीन चलती है। पार्टियों की सत्ता बदले, इससे कुछ बनता बिगडता नहीं। पिछले कुछ दशकों में किसी पार्टी विषेश का एकाधिकार नहीं रहा। कई पार्टियों की अलग या सम्मिलित सरकारें बनीं। उन्होनें भी कोई अलग आदर्श प्रस्तुत नही किया। जिस कीचड में बडी पार्टियों का छकडा घिसट रहा था, उसी में खडखडिंयॉ भी धॅस गईं। मूल समस्या यही है। किस पार्टी की सरकार बने, वह किन योजनाओं को कार्यान्वित करे, चुनाव बिना खर्च कैसे कराऍ, उपयुक्त व्यक्तियों को चुनने का जनस्तर कैसे बने ? और सरकारी मशीन में पुर्जे बनने वाले कर्मचारी घर से ही आदर्शवादी और

भावना सम्पन्न बनकर वहॉ तक कैसे पहुॅचे ? प्रजातन्त्र की जड जनता है। जहॉ जनता का स्तर उॅचा होगा वहीं प्रजातन्त्र सफल हो सकेगा। हमें यदि प्रजातन्त्र पसन्द है, तो उसकी सफलता की अनिवार्य शर्त जनता का भावनात्मक एवं चारित्रिक स्तर भी उॅचा उठाना ही पडेगा।

हम जानते हैं कि जनमानस के अंतरंग का स्पर्श करने और कोमल भवनाओं को संवेदनशील बनाने की क्षमता राजतन्त्र में नही है। उसकी मूल प्रकृति और प्रवृत्ति दूसरी है। कूटनीति, राजनीति का पर्यावाची बन गई है। उस स्तर में जो कुछ होगा लोग उसमें अकारण ही किसी कूटनीति या दुरभिसन्धि की गन्ध सूघेंगे। इसलिए राजतन्त्र के द्वारा इस प्रकार के प्रयत्न या प्रयोग जब कभी हुए हैं, उन्हें असफलता ही हाथ लगी है। यह क्षेत्र वस्तुतः धर्म और दर्शन का है। बौद्धिक, नैतिक एवं सामाजिक क्रान्ति के लिए विचारणा का स्तर बहुत गहराई से बदलना होगा। उथला बदलाव कोई स्थिर परिणाम उत्पन्न नही करेगा। इस प्रयोजन की पूर्ति में केवल धर्मतन्त्र ही समर्थ हो सकता है।

राजनैतिक स्तर पर बाल–विवाह, छुआ–छूत निवारण, दहेज उन्मूलन, व्यभिचार विरोधी कानून बने हुए हैं, पर उनको कितना मान मिला और कितना परिणाम निकला यह सबके सामने है।

भौतिक सुधार कराना राजतन्त्र का क्षेत्र है। भावनात्मक सुधार के लिए प्रजातंन्त्र के वातावरण में केवल धर्मतन्त्र ही समर्थ हो सकता है। प्रजातन्त्र हटाकर अधिनायकवाद आना है तो आतंक के आधार पर विचार परिवर्तन भी सम्भव है, पर वह प्रयोग महॅगा है। व्यक्ति की विचार स्वतन्त्रता अपहृत हो जाने पर वह एक मशीन मात्र रह जाता है और सॉस्कृतिक प्रगति की जिस महान प्रक्रिया ने मानव जाति को यहॉ तक पहुॅचाया उसका द्वार बन्द हो जाता है। हम प्रजातन्त्र पसंद करते हैं। उसमें बहुत खूबियॉ और सम्भावनाऍ सन्निहित है। फिर प्रजातन्त्र की परिधि में जनमानस का निर्माण करना धर्म एवं अध्यात्म का ही क्षेत्र रहता है।

हम राजनीति से अलग नही हैं, न उसका मूल्य कम कर रहें हैं। बात इतनी भर है कि हम जड में खाद, पानी लगाने वाले माली बने रहना चाहते हैं। फूल और फल का व्यापार दूसरे लोग करें, इसमें हमें काई आपत्ति नही है और न ही ईर्ष्या। हम अनुभव करते हैं कि उथले राजनीतिज्ञों की अपेक्षा हम अधिक ठोस और अधिक महत्वपूर्ण नीति अपना रहे हैं और हमारे प्रयत्नों का फल किसी भी राजनैतिक पार्टियों की अपेक्षा अधिक सत्परिणाम उत्पन्न करेगा। गॉधी जी का जनमानस निर्माण का काम अधूरा रह गया, हमें उनके शेष काम को पूरा करने वाले कुली, मजदूर की तरह जुटे रहना मंजूर है। दूसरे लोग अपने तप का प्रतिफल चखें–चखतें रहें। अपने मुॅह से उसके लिए लार टपकने वाली नही है। हम स्वस्थ राजनीति के विकसित हो सकने की सम्भावना वाला भवन बनाने में नींव के पत्थर मात्र बनकर रहेंगें और जो भी हमारे प्रभाव सम्पर्क में आएगा, उसे इसी दिशा में प्रेरित, आकर्षित करते रहेंगें।

इस सन्दर्भ में युग ऋषि ने समाज के प्रबुद्ध जनों को लक्ष्य करके उनसे भी इसी दिशा में प्रयास करने की अपील की है। उनके कथन का सारांश कुछ इस प्रकार है– ''धर्म क्षेत्र में कार्य कर रहे अन्य संगठन भी इस दिशा में सार्थक प्रयास कर सकते हैं। इसके लिये उन्हें धर्मतन्त्र के मर्म को समझते हुए सम्प्रदाय तंन्त्र से उपर उठकर सोचना होगा। धर्म उस अनुशासन का नाम है, जो मनुष्य को पशुता की ओर जाने से रोककर देवत्व की दिशा में प्रेंरित करता है। जैसे शारीरिक व्यायाम वही श्रेष्ठ है जो शारीरिक आरोग्य और स्वास्थ्य प्रदान करें, उसी प्रकार वही धार्मिक आचार व्यवहार श्रेष्ठ है, जो मनुष्यों का चारित्रिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य उत्तम बना सकें।''

इस दिशा में कार्य करने वाले सामाजिक संगठनों को 'प्रजातन्त्र' के पक्ष में 'पार्टी तन्त्र' से उपर उठना होगा।

उत्तर– आप के विचार बहुत महत्वपूर्ण है। अगले अंक में हम इसकी समीक्षा प्रसारित करेंगें।

सूचना

अब तक ए टू जेड टीवी चैनल से प्रत्येक शुक्रवार शाम 4:30 बजे, शनिवार रात 8 बजे, रविवार और सोमवार को भी रात 8 बजे, विचार–मंथन प्रसारित होता रहा है। अब उसका समय बदल गया है। अब प्रत्येक गुरूवार और शुक्रवार को शाम 6 बजे, शनिवार और रविवार को रात 8 बजे तथा प्रतिदिन रात 11:30 बजे प्रसारित होता है। नये समय के अनुसार आप ये टीवी कार्यक्रम देखने–सुनने की कृपा करें। यह कार्यक्रम पहले की तरह ही रिलाएंस छतरी के 425 नम्बर चैनल,ए टू जेड में प्रसारित होता है।